तर्क और प्रमाणों द्वारा

ज्ञानेश्वरार्य :

एम. ए. दर्शनाचार्य

प्रकाशक

दर्शन योग महाविद्यालय

आर्य वन, रोज़ड, पो. सागपुर, जि.

साबर कांठा, गुजरात-३८३३०७.

दूरभाष : (०२७७४) ७७२१७

Ishwar Ka Khandan Tatha Mandan

By :

Gyaneshwar Arya (M.A. Darshanacharya)

आवृत्ति : चतुर्थ जून - १९९८

लागत व्यय : ३-०० रूपये

प्राप्ति स्थान :

१. **दिनेश कुमार सुखडिया**
१५७/१८७६, प्रतीक्षा अेपार्टमेन्टस, सोला रोड,
अहमदाबाद-३८० ०६३.

२. **ऋषि उद्यान,**
आनासागर, पुष्कर रोड, अजमेर (राजस्थान)-३०५ ००१.

३. **आर्य समाज मन्दिर**
महर्षि दयानन्द मार्ग,
रायपुर दरवाजा बाहर, अहमदाबाद-३८० ०२२.

४. **दर्शन योग महाविद्यालय**
आर्य वन, रोजड़, पो. सागपुर,
जि. साबरकांठा (गुजरात)-३८३ ३०७.

मुद्रक : आकृति प्रिन्टर्स, अहमदाबाद, फोन : २७४८९७४

भूमिका
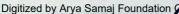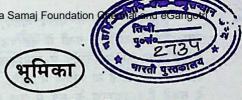
आज दार्शनिक सत्य सिद्धान्तों से अनभिज्ञ, मात्र रूप, रस आदि पाँच भौतिक विषयों में आसक्त, प्रकृति पूजक नास्तिक व्यक्ति; अपूर्ण विज्ञान, कुतर्क व हेत्वाभासों को प्रस्तुत करके परम पावन परमेश्वर की सत्ता का निषेध कर रहे हैं और आस्तिकों की धार्मिक मान्यताओं का खण्डन करने का भी असफल प्रयास कर रहे हैं। सर्वत्र यह मान्यता विस्तृत होती जा रही है कि "ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं है, वह तो एक कल्पना मात्र है। यदि कोई ईश्वर नामक पदार्थ संसार में है भी तो उसकी हमारे जीवन में कोई उपयोगिता वा आवश्यकता नहीं हैं।"

इतना ही नहीं; कुछ नास्तिकों ने तो दुस्साहस करके ईश्वर को सिद्ध करने वालों को लाखों रुपये पुरस्कार रूप में देने तक की घोषणाएँ भी कर दी हैं। इन सब का परिणाम यह हुआ कि अधिकांश मनुष्यों के विचारों व व्यावहारों में नास्तिकता की जड़ें गहरी और गहरी होती जा रही हैं। इस नास्तिकता की आँधी का प्रतिवाद, देशके हज़ारों मत, पंथ, सम्प्रदायों के अनुयायी कदापि नहीं कर सकते। क्योंकि सत्य सनातन वैदिक शास्त्रों के सूक्ष्म सिद्धान्तों से अनभिज्ञ, इन सम्प्रदायवादियों ने ईश्वर, धर्म, पूजा, उपासना व कर्मकाण्ड का ऐसा विकृत तथा अवैज्ञानिक स्वरूप अपना रखा है, जो किसी भी बुद्धिजीवी के मस्तिष्क में नहीं बैठता। प्रथम तो ये मत, पंथ वाले नास्तिकों के साथ वाद-विवाद करते ही नहीं, यदि किसी तरह साहस करके खड़े होते हैं तो शीघ्र ही नास्तिकों के प्रबल कुतर्कों व हेत्वाभासों के सामने परास्त हो जाते हैं।

लेकिन सौभाग्य से महर्षि गौतम, कपिल, कणाद आदि महानुभावों के दार्शनिक ग्रन्थों में वह पद्धति विद्यमान है, जिसका आश्रय लेकर हम नास्तिकता से सम्बन्धित जो प्रश्न अब तक उठे हैं, उठाये जा रहे हैं वा भविष्य में उठेंगे, उन सबका तर्कपूर्ण उत्तर दे सकते हैं। उदाहरण के रूप में कुछ संवाद इस लघु पुस्तिका में प्रस्तुत किये जा रहे हैं। आशा है जिज्ञासु लोग इन्हें पढ़कर लाभ उठायेंगे।

— ज्ञानेश्वरार्यः

संवाद-१

नास्तिक व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त पञ्च अवयव :

१. प्रतिज्ञा—ईश्वर नहीं है ।

२. हेतु—दिखाई न देने से । जो-जो वस्तु नहीं दीखती, वह-वह नहीं होती ।

३. उदाहरण—जैसे खरगोश का सींग ।

४. उपयन—खरगोश के सींग के समान ही ईश्वर दिखाई नहीं देता ।

५. निगमन—इसलिए दिखाई न देने के कारण ईश्वर नहीं है ।

व्याख्या : नास्तिकों की ओर से आस्तिकों पर आज-कल बड़े बल के साथ यह आक्षेप किया जाता है कि संसार में ईश्वर नाम की कोई वस्तु है ही नहीं । यदि होती, तो आँखों से अवश्य दिखाई देती, जैसे कि भूमि, जल, अग्नि आदि वस्तुएँ दीखती हैं । आज तक एक भी ईश्वर-विश्वासी ने न तो अपनी आँखों से उस काल्पनिक ईश्वर को देखा है और न ही किसी अन्य अविश्वासी को दिखा सका है । आस्तिक लोग ईश्वर-ईश्वर तो दिन-रात रटते रहते हैं, किन्तु वास्तव में इस 'ईश्वर' शब्द के पीछे सत्तात्मक वस्तु कोई भी नहीं है । जैसे 'खरगोश का सींग' 'आकाश का फूल' 'वन्ध्या का पुत्र' नहीं होता, फिर भी कहा जाता है, वैसे ही 'ईश्वर' है नहीं, किन्तु मात्र कहा जाता है । हम विज्ञान वाले तो केवल उन्हीं वस्तुओं को मानते हैं जो आँखों से, माइक्रोस्कोप से या टैलिस्कोप से दिखाई देती हैं, अर्थात् हम केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को मानते हैं, अनुमान और शब्द प्रमाण को नहीं मानते ।

आस्तिक व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त पञ्च अवयव :

१. प्रतिज्ञा—ईश्वर है ।

२. हेतु—शुद्ध अन्तःकरण वाले आत्मा के द्वारा देखा = (अनुभव किया) जाने से ।

३. उदाहरण—सुख-दुःख आदि के समान ।

४. उपनय—जैसे आत्मा सुख-दुःख आदि का अनुभव मन आदि अन्तःकरण से करता है, ज्ञानेन्द्रियों से नहीं । वैसे ही आत्मा, ईश्वर का अनुभव अन्तःकरण से करता है, नेत्रादि इन्द्रियों से नहीं ।

५. निगमन—इसलिए शुद्ध अन्तःकरण वाले आत्मा के द्वारा ईश्वर का प्रत्यक्ष होने से ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है ।

व्याख्या : सर्वप्रथम इस विषय पर विचार करते हैं कि क्या ईश्वर ही एक ऐसी वस्तु है जो आँखों से दिखाई नहीं देती, या अन्य भी इसी प्रकार की कुछ वस्तुएँ हैं जो आँखों से दिखाई नहीं देती । यदि कुछ गम्भीरता से विचार किया जाये तो पता चलेगा कि एक नहीं अनेक ऐसी वस्तुएँ संसार में हैं, जो आँखों से दिखाई नहीं देती, फिर भी लोग उनको मानते हैं और उनसे काम भी लेते हैं । जैसे सुख-दुःख, भूख-प्यास, ईर्ष्या-द्वेष, मन-बुद्धि, शब्द, गन्ध, वायु आदि । इनमें से एक भी वस्तु ऐसी नहीं हैं, जो आँखों से दिखाई देती हो, फिर भी नास्तिक इन वस्तुओं को स्वीकार करते हैं । फिर ईश्वर के साथ ही यह अन्याय क्यों ! कि ईश्वर दिखाई नहीं देता, इसलिए हम उसे नहीं मानते हैं ।

बुद्धिपूर्वक विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि—आँखों से किसी वस्तु का दिखाई न देना अन्य बात है, तथा वस्तु का सत्तारूप में न होना अन्य बात है । यह कोई नियम नहीं कि जो वस्तु आँखों से दिखाई न देवे, वह सत्ता रूप में भी न होती हो ।

'खरगोश का सींग', 'आकाश का फूल', 'वन्ध्या का पुत्र' आदि जो उदाहरण आपने अपने पक्ष की पुष्टि में दिये हैं, वे वस्तुएँ तो वास्तव में सत्तात्मक होती ही नहीं हैं, केवल उनकी कल्पना करली जाती है । ऐसी वस्तुओं का आँखों से दिखाई न देना तो हम भी मानते हैं जो वास्तव में होती ही नहीं हैं ।

परन्तु कुछ वस्तुएँ, जो किन्हीं कारणों से हम आँखों से देख नहीं पाते हैं, उनको न मानना उचित नहीं है । जैसे कि पहले उदाहरण दिये जा चुके हैं, वायु, सुख-दुःख, भूख-प्यास, शब्द-गन्ध आदि । ये सब आँखों से न दीखते हुए भी सत्तात्मक हैं । ऐसे ही ईश्वर भी आँखों से नहीं दीखता, फिर भी वह एक सत्तात्मक पदार्थ है, और उसका प्रत्यक्ष भी होता है ।

आपने जो यह कहा कि हम केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मानते हैं, अनुमान और शब्द प्रमाण को नहीं, वास्तव में ऐसी बात नहीं है । आज प्रत्येक भौतिक-वैज्ञानिक और विज्ञान का विद्यार्थी प्रत्यक्ष के साथ-साथ अनुमान और शब्द प्रमाण को भी स्वीकार करता है । उदाहरण के लिए पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षणशक्ति (Gravitational Force), विद्युत तरंगें (Electro Magnatic Waves), अल्फा, बीटा, गामा तथा एक्स किरणों (Alpha, Beta, Gamma, X-Rays) को किसी भी वैज्ञानिक ने आज तक अपनी आँखों से नहीं देखा है, फिर भी सभी वैज्ञानिक इनकी सत्ता को स्वीकार करते हैं ।

इसी प्रकार से किसी भी वैज्ञानिक ने इस पृथ्वी को बनते हुए नहीं देखा, फिर भी अनुमान के आधार पर यह मानते हैं कि हमारी पृथ्वी लगभग इतने वर्ष पुरानी है । किसी भी वैज्ञानिक ने अपने पिता की सातवीं पीढ़ी के व्यक्ति को नहीं देखा तो भी क्या कोई वैज्ञानिक अपने पिता की सातवीं पीढ़ी की सत्ता से इन्कार कर सकता है ? ये सब अनुमान प्रमाण के उदाहरण हैं ।

प्रत्येक विज्ञान का विद्यार्थी न्यूटन, आईन्स्टीन आदि बड़े-बड़े वैज्ञानिकों के बनाये हुए गुरुत्वाकर्षण और गति आदि के नियमों को, बिना स्वयं परीक्षण किये केवल मात्र पुस्तक से पढ़कर यथावत् स्वीकार करता है । इसी प्रकार से जिन-जिन वैज्ञानिकों ने सूर्य के आकार, परिधि, तापमान, भार आदि के सम्बन्ध में जो-जो विवरण दिये हैं तथा आकाशगंगा (Galaxy) के तारों, उनकी परस्पर

दूरी, गति आदि के विषय में जो बातें लिखी हैं, उनको विज्ञान के

विद्यार्थी सत्य स्वीकार करते हैं । ऐसे ही इलैक्ट्रान, प्रोटोन और न्यूटॉन को सभी विद्यार्थी सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से स्वयं नहीं देखते, फिर भी वैज्ञानिकों के कथन को सत्य मानते हैं । ये सब शब्द प्रमाण को स्वीकार करने के उदाहरण हैं ।

जैसे विज्ञान के क्षेत्र में वस्तुएँ तीनों प्रमाणों से सिद्ध होती हैं, और मानी जाती हैं, वैसे ही ईश्वर भी तीनों प्रमाणों से सिद्ध होता है, अतः उनको मानना चाहिए । परन्तु ईश्वर का प्रत्यक्ष नेत्रादि इन्द्रियों से नहीं होता, बल्कि मनादि अन्तःकरण से होता है । ईश्वर की सिद्धि तीनों प्रमाणों से होती है, इसे निम्न प्रकार से समझना चाहिए—

ईश्वर की सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाण से : प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है, एक बाह्य, दूसरा आन्तरिक । नेत्रादि इन्द्रियों से रूपादि विषय वाली वस्तुओं का जो प्रत्यक्ष होता है, वह बाह्य प्रत्यक्ष कहलाता है; और मन-बुद्धि आदि अन्तःकरण से सुख-दुःख, राग-द्वेष, भूख-प्यास आदि का जो प्रत्यक्ष होता है, वह आन्तरिक प्रत्यक्ष कहलाता है ।

जैसे रूपादि विषय वाली वस्तु को देखने के लिए नेत्रादि इन्द्रियों का स्वस्थ-स्वच्छ तथा कार्यकारी होना आवश्यक है, वैसे ही आत्मा-परमात्मा को प्रत्यक्ष करने के लिए मन-बुद्धि आदि अन्तःकरण का भी स्वस्थ तथा पवित्र होना अनिवार्य है । जैसे आँख में धूल गिर जाने पर या सूजन हो जाने पर या मोतियाबिन्द हो जाने पर वस्तु दिखाई नहीं देती, वैसे ही राग-द्वेषादि के कारण मन आदि अन्तःकरण के अपवित्र या रजोगुण के कारण चंचल हो जाने पर आत्मा-परमात्मा का प्रत्यक्ष नहीं होता । जैसे सुख-दुःखादि विषयों का प्रत्यक्ष नेत्रादि बाह्य इन्द्रियों से नहीं होता, केवल रूप-रसादि विषयों का ही होता है, वैसे ही आत्मा, परमात्मा,

मन-बुद्धि आदि सूक्ष्म विषयों का प्रत्यक्ष भी नेत्रादि इन्द्रियों से नहीं होता, मन आदि अन्तःकरण से होता है, यह ईश्वर के प्रत्यक्ष करनें की पद्धति है ।

ईश्वर की सिद्धि अनुमान प्रमाण से : इसी प्रकार अनुमान प्रमाण से भी ईश्वर की सिद्धि होती है । कोई भी वस्तु यथा मकान, रेल, घड़ी आदि बिना बनाने वाले के नहीं बनती, चाहे हमने मकान, रेल, घड़ी आदि के बनाने वाले को अपनी आँखों से न भी देखा हो, तो भी उसके बनाने वाले की सत्ता को मानते हैं । ठीक इसी प्रकार से वैज्ञानिक लोग इन पृथ्वी, सूर्यादि की उत्पत्ति करोड़ों वर्ष पुरानी मानते हैं । इससे भी सिद्ध है कि इनको बनाने वाला भी कोई न कोई अवश्य ही है । क्योंकि ये पृथ्वी, सूर्यादि जड़ पदार्थ अपने आप बन नहीं सकते, जैसे कि रेल आदि अपने आप नहीं बन सकते । और न सूर्यादि को मनुष्य लोग बना सकते हैं, क्योंकि मनुष्यों में इतना सामर्थ्य और ज्ञान नहीं है । इसलिए जो इन्हें बनाता है, वही ईश्वर है ।

ईश्वर की सिद्धिं शब्द प्रमाण से : जिन साधकों (ऋषियों) ने यम नियमादि योग के आठ अङ्गों का अनुष्ठान करके मन आदि अन्तःकरण को एकाग्र व पवित्र बनाया, वे कहते हैं कि समाधि में आत्मा-परमात्मा का प्रत्यक्ष होता है । किन्तु यह प्रत्यक्ष नेत्रादि इन्द्रियों से होने वाले बाह्य प्रत्यक्ष के समान रंग रूप वाला न होकर, सुख-दुःखादि के समान आन्तरिक अनुभूति है । ऋषियों का अनुभव यह है, जो हमारे लिए शब्द प्रमाण है—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ।।

—मुण्डकोपनिषद् ३-१-५

अर्थ—यह भगवान् (ईश्वर) सदा सत्य आचरण से,

तप से, यथार्थ ज्ञान से और ब्रह्मचर्य से प्राप्त किया जाता है । वह शरीर के भीतर ही प्रकाशमय (ज्ञानस्वरूप) और शुद्ध (पवित्र) स्वरूप में विद्यमान है । योगी लोग रागद्वेष आदि दोषों को नष्ट करके समाधि में उसे देख (अनुभव कर) लेते हैं ।

जैसे वैज्ञानिकों के विवरण पृथ्वी, सूर्य, आकाश-गंगाओं आदि के संबंध में शब्द प्रमाण के रूप में स्वीकार किये जाते हैं, क्योंकि उन्होंने उन विषयों को ठीक-ठीक जाना है । इसी प्रकार से ऋषियों के भी ईश्वर सम्बन्धी विवरण शब्द प्रमाण के रूप में अवश्य ही स्वीकार करने चाहिए, क्योंकि उन्होंने भो समाधि के माध्यम से ईश्वर को ठीक-ठीक जाना है ।

इसलिए तीनों प्रमाणों से ईश्वर की सत्ता सिद्ध है । नास्तिक लोग उपर्युक्त तीनों प्रमाणों पर विशेष ध्यान दें और शुद्ध अन्तःकरण से आत्मा के द्वारा ईश्वर के आन्तरिक प्रत्यक्ष को स्वीकार करें, यही न्याय की बात है । अन्यथा आँख से न दीखने वाली वायु, शब्द, गन्ध, सुख-दुःख, मन-बुद्धि, भूख-प्यास, दर्द आदि को और पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति (Gravitational Force), विद्युत तरंगों (Electro-Magnatic Waves), अल्फा (Alpha), बीटा (Beta), गामा (Gamma), और एक्स किरणों (X-Rays) को भी मानना छोड़ दें । यदि इनको मानना नहीं छोड़ते हैं तो ईश्वर की सत्ता को भी स्वीकार करें ।

संवाद-२

नास्तिक द्वारा ईश्वर की सत्ता का खण्डन—

१. प्रतिज्ञा—ईश्वर नहीं है ।

२. हेतु—संसार के अपने आप बन जाने से ।

३. उदाहरण—जैसे जंगल के वृक्ष-वनस्पति आदि ।

४. उपनय—जंगली वृक्षों के समान ही संसार अपने आप बन जाता है ।

५. निगमन—इसलिए संसार के अपने आप बन जाने से (इसका कर्त्ता) ईश्वर नहीं है ।

व्याख्या : आप आस्तिक लोग ईश्वर के होने में यह अनुमान करते हैं कि—संसार एक बनायी हुई चीज है, यह बिना किसी के बनाये बन नहीं सकती, इसलिए जो इसका बनाने वाला है, वही ईश्वर है । आपकी इस बात में कोई बल नहीं है, क्योंकि हम स्पष्ट ही देखते हैं कि— प्रतिवर्ष हजारों लाखों की संख्या में जंगलों में वृक्ष-वनस्पति-औषधि-लताएँ-कन्द-मूल-फलादि अपने आप उत्पन्न होते हैं, बढ़ते हैं, और नष्ट हो जाते हैं । इनका कोई कर्त्ता दिखाई नहीं देता, वैसे ही संसार के पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, आदि पदार्थ अपने आप बनते हैं, चलते हैं और नष्ट हो जाते हैं । इनको बनाने, चलाने के लिए किसी कर्त्ता की आवश्यकता नहीं है । इसलिए आपका काल्पनिक ईश्वर असिद्ध है ।

आस्तिक द्वारा ईश्वर की सत्ता का मण्डन :

१. प्रतिज्ञा—ईश्वर (संसार का कर्त्ता) है ।

२. हेतु—पृथ्वी, सूर्यादि कार्य वस्तुएँ बिना कत्ता के = अपने आप न बन सकने के कारण ।

३. उदाहरण—घड़ी, टेपरिकॉर्डर, मकान आदि के समान ।

४. उपनय—जैसे घड़ी, टेपरिकॉर्डर, मकान आदि कार्य

वस्तुएँ बनायी जाती हैं, वैसे ही पृथ्वी, सूर्य आदि कार्य वस्तुएँ भी बनायी जाती हैं ।

५. निगमन—इसलिए पृथ्वी, सूर्य आदि कार्य वस्तुओं के अपने आप न बन सकने से (इनका कर्त्ता) ईश्वर सिद्ध है ।

व्याख्या : पहले यह विचारने का विषय है कि क्या कोई कार्य वस्तु अपने आप ही बन जाती है या किसी कर्त्ता के द्वारा बनाने से ही बनती है ? संसार में हम प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि—मकान आदि कार्य वस्तु के लिए मिस्त्री-मजदूर (निमित्त कारण = कर्ता) की आवश्यकता पड़ती है । बिना मिस्त्री-मजदूर के मकान कदापि नहीं बन सकता । फिर भला पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदि कार्य वस्तुओं के लिए किसी निमित्त कारण = कर्त्ता = ईश्वर की आवश्यकता क्यों नहीं पड़ेगी ? अवश्य ही पड़ेगी । प्रत्येक कार्य के लिए निमित्त कारण = कर्त्ता का नियम पाया जाता है ।

जैसे पैन, पुस्तक, मेज, कुर्सी, पलंग, पंखा, रेडियो, घड़ी, मोटर, रेल, हवाई जहाज आदि वस्तुओं को बनाने वाले कर्त्ता के रूप में मनुष्य लोग ही होते हैं । क्या ये चीजें बिना बनाने वालों के अपने आप बन सकती है ? कदापि नहीं । "बिना बनाने वाले के कोई वस्तु अपने आप नहीं बन सकती" इसी नियम को प्राचीन भारतीय महान् वैज्ञानिक महर्षि कणाद ने भी स्वीकार किया है—"कारणाऽभावात् कार्याऽभावः ॥" -वैशेषिक दर्शन १-२-१

आपने पृथ्वी आदि कार्य वस्तुओं के अपने आप बन जाने की पुष्टि में जंगल के वृक्षों आदि का जो उदाहरण दिया है, वह ठीक नहीं है । क्योंकि उदाहरण वह होना चाहिए, जो पक्ष और विपक्ष दोनों को समान रूप से स्वीकार हो, जैसा कि न्यायदर्शनकार महर्षि गौतम ने अपने ग्रन्थ 'न्याय दर्शन' (१-१-२५,) में लिखा हैं—"लौकिक-परीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तः ॥"

अर्थ—जिस वस्तु को सामान्य व्यक्ति और विद्वान् व्यक्ति दोनों एक स्वरूप में स्वीकार करते हों, वह दृष्टान्त या उदाहरण कहलाता है । जैसे 'अग्नि जलाती है' इसे सब मानते हैं, आप भी और हम भी ।

हम जंगल के वृक्षों को अपने-आप उत्पन्न हुआ नहीं मानते । उनका भी कोई कर्त्ता है, और वह है सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् ईश्वर । जैसे हमने अपने पक्ष की पुष्टि में जो मकान आदि के उदाहरण दिये हैं, वे आपको भी मान्य हैं, वैसे ही आपको, अपने-आप बनी हुई वस्तु का ऐसा उदाहरण देना चाहिए, जो हमें भी मान्य हो । हमारी दृष्टि में तो संसार में आपको अपने-आप बनी हुई वस्तु का एक भी उदाहरण नहीं मिलेगा । क्योंकि यह सत्य सिद्धान्त है कि 'अपने-आप कोई वस्तु बन ही नहीं सकती ।' जब बन ही नहीं सकती, तो उदाहण भी नहीं मिलेगा । जब उदाहरण ही नहीं मिलेगा, तो आपके पक्ष की सिद्धि कैसे होगी ? क्योंकि बिना उदाहरण के तो कोई पक्ष सिद्ध हो नहीं सकता । इसलिए उदाहरण के अभाव में आपका पक्ष सिद्ध नहीं होता ।

जो आपने सूर्यादि पदार्थों केबिना किसी कर्त्ता के-अपने आप बन जाने की बात कही है, इस पर गंभीरता से विचार करें । यह तो आप भी मानते हैं कि ये पृथ्वी आदि पदार्थ जड़ हैं और प्रकृति के छोटे-छोटे परमाणुओं के परस्पर मिलने से बने हैं । ये सब परमाणु भी जड़ हैं, इनमें ज्ञान या चेतना तो है नहीं, फिर ये स्वयं आपस में मिलकर पृथ्वी आदि के रूप में कैसे बन सकते हैं ? इस सम्बन्ध में चार पक्ष हो सकते हैं—

(१) यदि आप कहो कि इन सब परमाणुओं में परस्पर मिलकर पृथ्वी आदि के रूप में बन जाने का स्वभाव है; तो एक बार मिलकर ये परमाणु पृथ्वी आदि पदार्थों का रूप धारण तो कर लेंगे, परन्तु अलग कभी नहीं होंगे अर्थात् प्रलय नहीं होगी ।

क्योंकि एक जड़ वस्तु में एक काल में दो विरुद्ध धर्म (मिलना और अलग-अलग होना) स्वाभाविक नहीं हो सकते ।

(२) यदि कहो कि इन सब परमाणुओं में अलग-अलग रहने का स्वभाव है, तो फिर ये परस्पर मिलकर पृथ्वी आदि का रूप धारण कर ही नहीं सकेंगे, क्योंकि कोई भी वस्तु अपने स्वभाव से विरुद्ध कार्य नहीं कर सकती । ऐसी स्थिति में संसार कैसे बनेगा ?

(३) यदि कहो कि कुछ परमाणुओं में मिलने का स्वभाव है और कुछ में अलग-अलग रहने का, तो ऐसी अवस्था में, यदि मिलने वाले परमाणुओं की अधिकता हेगी, तब संसार बन तो जायेगा परन्तु नष्ट नहीं होगा । यदि अलग-अलग रहने वाले परमाणुओं की अधिकता होगी तो संसार बनेगा ही नहीं, क्योंकि जो परमाणु अधिक होंगे, उनकी शक्ति अधिक होगी और वे अपना कार्य सिद्ध कर लेंगे ।

(४) यदि कहो कि मिलने व अलग-अलग रहने वाले दोनों प्रकार के परमाणु आधे-आधे होंगे, तो ऐसी अवस्था में भी संसार बन नहीं पायेगा । क्योंकि दोनों प्रकार के परमाणुओं में सतत संघर्ष ही चलता रहेगा ।

इन चारों में से कोई भी पक्ष संसार के पदार्थों के बनने और बिगड़ने की सिद्धि नहीं कर सकता, जो कि संसार में प्रत्यक्षादि प्रमाणों से उपलब्ध है । यदि आप कहो कि स्वचालित यन्त्र (Automatic Machine) के समान प्रकृति के परमाणुओं का अपने आप संसार रूप में बनना व बिगड़ना चलता रहता है, तो आपका यह दृष्टान्त भी ठीक नहीं, क्योंकि स्वचालित यन्त्र को भी तो स्वचालित बनाने वाला कोई चेतन कर्त्ता होता ही है । अतः 'बिना कर्त्ता के कोई कार्य वस्तु नहीं बनती' यह सिद्धान्त अनेक उदाहरणों से, अच्छी प्रकार से हमने सिद्ध कर दिया है ।

अब आप महान् भौतिक वैज्ञानिक महाशय न्यूटन के

अभिप्रेरणा नियम (Law of Motion) के साथ भी अपनी 'स्वभाव से संसार बन जाने' की बात मिलाकर देख लीजिये । नियम यह है कि–

(A body in a state of rest or of motion will continue in its state of rest or of motion untill an external force is applied.)

अर्थात्—'कोई भी स्थिर पदार्थ तब तक अपनी स्थिर अवस्था में ही रहेगा जब तक किसी बाह्यबल से उसे गति न दी जाये, और कोई भी गतिशील पदार्थ तबतक अपनी गतिशील अवस्था में ही रहेगा जबतक किसी बाह्यबल से उसे रोका न जाये ।'

अब प्रश्न यह है कि संसार के बनने से पूर्व परमाणु यदि स्थिति की अवस्था में थे, तो गति किसने दी ? यदि सीधी गति की अवस्था में थे, तो गति में परिवर्तन किसने किया, कि जिसके कारण ये परमाणु संयुक्त होकर पृथ्वी आदि पदार्थों के रूप में परिणत हो गये । 'स्थिर वस्तु को गति देना और गतिशील वस्तु की दिशा बदलना' ये दोनों कार्य बिना चेतन कर्त्ता के हो ही नहीं सकते । महाशय न्यूटन ने अपने नियम में इस 'कर्त्ता' को 'बाह्य बल' = (External Force) के नाम से स्वीकार किया है ।

संसार की घटनाओं का गंभीरता से अध्ययन करने पर पता चलता है कि—संसार की विशालता, विविधता, नियमबद्धता, परस्पर ऐक्यभाव, सूक्ष्म रचना कौशल, निरन्तर संयोग-वियोग, प्रयोजन की सिद्धि आदि—इन चेतना-रहित (जड़) परमाणुओं का कार्य कदापि नहीं हो सकता, इन सब के पीछे किसी सर्वोच्च बुद्धिमान, सर्वव्यापक, अत्यन्तशक्तिशाली, चेतन कर्त्ता शक्ति का ही हाथ सुनिश्चित है, उसी को हम 'ईश्वर' नाम से कहते हैं ।

हम आप स्वभाववादियों (Naturalists) इसे पूछते हैं कि प्रकृति खेत में गेहूँ, चना, चावल तक बनकर ही

क्यों रुक गयीं ! गेहूँ से आटा, फिर आटे से रोटी तक बन कर हमारी थाली में क्यों नहीं आयी ! गाय-भैंस के पेट में दूध तक ही क्यों सीमित रही; दूध से खोया, फिर खोये से बर्फी तक क्यों नहीं बनी ! कपास तक ही प्रकृति सीमित क्यों रही, उसकी रुई, फिर सूत, वस्त्र और वस्त्र से हमारी कमीज-पतलून (Shirt-Pant) तक क्यों नहीं बनी ! आपके पास इसका क्या समाधान है ?

हमारे पक्ष के अनुसार इसका समाधान यह है कि कार्य वस्तुओं के बनाने वाले कर्त्ता दो हैं—एक ईश्वर और दूसरा जीव (मनुष्यादि प्राणी) इनका कार्य-विभाजन इस प्रकार से हैं कि—'प्रकृति के परमाणुओं से पाँच भूतों* को बनाना और फिर इन भूतों से वृक्ष, वनस्पति आदि को बनाना, यहाँ तक का कार्य ईश्वर का है, इससे आगे का कार्य मनुष्यों का है। जैसे कि नदी बनाने का कार्य ईश्वर का है, नदी से नहरें निकालने का कार्य मनुष्यों का। मिट्टी बनाने का कार्य ईश्वर का है, मिट्टी से ईंट बनाकर मकान बनाने का कार्य मनुष्यों का है। पेड़ बनाने का कार्य ईश्वर का है और पेड़ से लकड़ी काटकर मेज-कुर्सी, खिड़की-दरवाजे बनाने का कार्य मनुष्यों का है। इसी प्रकार से गेहूँ, चना, कपास आदि बनाना ईश्वर का कार्य है, परन्तु रोटी, कपड़ा आदि बनाना मनुष्यों का कार्य है। कार्य कोई भी हो, हर जगह, हर कार्य में 'कर्त्ता' का होना आवश्यक है।

इसलिए "संसार अपने-आप बन गया, इसका कर्त्ता कोई नहीं है" यह पक्ष किसी भी प्रकार से सिद्ध नहीं होता। तर्क और प्रमाण से यही सिद्ध होता है कि "प्रत्येक कार्य-वस्तु के पीछे कोई न कोई चेतन कर्त्ता अवश्य ही होता है, संसार में कोई भी वस्तु अपने आप नहीं बनती।" इसी नियम के आधार पर 'संसार का भी कर्त्ता होने से ईश्वर है।'

---

* पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।

संवाद-३

नास्तिक द्वारा ईश्वर की सत्ता में किया गया प्रतिषेध :

१. प्रतिज्ञा—ईश्वर नहीं है ।

२. हेतु—संसार बना-बनाया होने से ।

३. उदाहरण—पृथ्वी के समान ।

४. उपनय—जैसे पृथ्वी बनी-बनाई है, इसको बनते हुए किसी ने नहीं देखा, वैसा ही यह सम्पूर्ण संसार है ।

५. निगमन—इसलिए संसार बना-बनाया होने से ईश्वर नहीं है ।

व्याख्या : यह दिखाई देने वाला संसार न तो किसी ने बनाया है, और न ही यह अपने आप बना है; न तो इसको कोई नष्ट करेगा, और न ही कभी यह अपने आप नष्ट होगा । यह अनादिकाल से ऐसे ही बना-बनाया चला आ रहा है और अनन्त काल तक ऐसे ही चलता रहेगा । इस संसार के बनाने वाले किसी कर्त्ता को, किसी ने कभी नहीं देखा । यदि देखा होता तो मान भी लेते कि हाँ, इसका कर्त्ता कोई ईश्वर है । इसलिए कर्त्ता न दिखाई देने से यही बात ठीक लगती है कि यह संसार बिना कर्ता के अनादिकाल से ऐसे ही बना-बनाया चला आ रहा है और आगे भी अनन्तकाल तक चलता रहेगा ।

आस्तिक द्वारा ईश्वर की सत्ता में किया गया मण्डन :

१. प्रतिज्ञा—ईश्वर है ।

२. हेतु—संसार का कर्त्ता होने से ।

३. उदाहरण—बढ़ई के समान ।

४. उपनय—जैसे बढ़ई मेज़-कुर्सी का कर्त्ता होता है, वैसे ही ईश्वर संसार का कर्त्ता है ।

५. निगमन—इसलिए संसार का कर्त्ता होने से ईश्वर है ।

व्याख्या : प्रत्येक वस्तु के कर्त्ता का निर्णय केवल प्रत्यक्ष

देखकर ही नहीं होता, बल्कि अनुमानादि प्रमाणों से भी कर्त्ता का निर्णय होता है । बाज़ार से हम प्रतिदिन ऐसी अनेक वस्तुएँ लाते हैं, जिनको कारखानों, फैक्ट्रियों, आदि में बनाया जाता है । इन वस्तुओं को बनाते हुए, कारीगरों को हम नहीं देख पाते हैं, तो क्या हम उन सबको बनी-बनाई मान लेते हैं ? जैसे कि पैन, घड़ी, रेडियो, टेपरिकॉर्डर, टेलीविज़न, कार आदि । कोई भी बुद्धिमान् इन वस्तुओं को बनी-बनाई नहीं मानता है । ऐसी अवस्था में पृथ्वी आदि विशाल ग्रह-उपग्रहों को बनाते हुए यदि हमने नहीं देखा तो यह कैसे मान लिया जाय कि 'ये बने-बनाये ही हैं' । जैसे पैन, घड़ी, रेडियो, कार आदि को बनाने वाले कारीगर, कारखानों में इनकों बनाते हैं, वैसे ही पृथ्वी आदि पदार्थों को भी कोई न कोई अवश्य ही बनाता है । जो बनाता है, वही ईश्वर है ।

किसी भी व्यक्ति ने अपने शरीर को बनते हुए नहीं देखा तो क्या यह मान लिया जाये कि 'हम सब का शरीर सदा से बना-बनाया है-यह कभी नहीं बना !' ऐसा तो मानते हुए नहीं बनता । क्योंकि हम प्रतिदिन ही दूसरों के शरीरों को जन्म लेता हुआ देखते हें, और ऐसा अनुमान करते हैं कि जन्म से ९-१० मास पहले यह शरीर नहीं था । इस काल में इस शरीर का निर्माण हुआ है । जबकि हमने शरीर को बनते हुए नहीं देखा, फिर भी इसको बना हुआ मानते हैं । ठीक इसी प्रकार से पृथ्वी आदि पदार्थों को भी यदि बनते हुए न देख पायें, तो इतने मात्र से यह सिद्ध नहीं हो जाता कि पृथ्वी आदि संसार के पदार्थ सदा से बने-बनाये हैं । जैसे हमने अपने शरीरों को बनते हुए नहीं देखा, फिर भी इन्हें बना हुआ मानते हैं, ऐसे ही पृथ्वी आदि पदार्थ भी हमने बनते हुए नहीं देखे, परन्तु ये भी बने हैं, ऐसा ही मानना चाहिए ।

'पृथ्वी बनी है' इसे हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं । 'जो भी वस्तु टूट जाती है, वह वस्तु कभी न

कभी अवश्य ही बनी थी, यह सिद्धान्त है । जैसे गिलास के किनारे पर एक हल्की चोट मारने से गिलास का एक किनारा टूट जाता है और यदि गिलास पर बहुत जोर से चोट मारी जाये, तो पूरा गिलास चूर-चूर हो जाता है । वैसे ही पृथ्वी के एक भाग पर फावड़े-कुदाल से चोट मारने पर इसके टुकड़े अलग हो जाते हैं, तीव्र विस्फोटकों = (Dynamite) आदि साधनों के द्वारा जोर से चोट करने पर बड़े-बड़े पहाड़ आदि भी टूट जाते हैं । इसी प्रकार अणु-परमाणु बमों आदि से बहुत जोर से चोट मारी जाये, तो पूरी पृथ्वी भी टूट सकती है । इससे सिद्ध हुआ कि गिलास जैसे टूटा था—तब जबकि वह बना था; इसी प्रकार से पृथ्वी भी यदि टूट जाती है, तो वह भी अवश्य ही बनी थी । और इसको बनाने वाला ईश्वर ही है । इसी बात को हम पंच-अवयवों के माध्यम से निम्न प्रकार से समझ सकते हैं ।

१. प्रतिज्ञा—पृथ्वी आदि बड़े-बड़े ग्रह उत्पन्न हुए हैं ।
२. हेतु—तोड़ने पर टूट जाने से, जो वस्तु टूटती है वह बनी अवश्य थी ।
३. उदाहरण—गिलास के समान ।
४. उपनय—जैसे गिलास टूटता है, वह बना था; वैसे ही पृथ्वी भी टूटती है, वह भी बनी थी ।
५. निगमन—क्योंकि पृथ्वी आदि ग्रह तोड़ने से टूट जाते हैं, इसलिए वे बने हैं ।

विज्ञान का यह सिद्धान्त है कि संसार का सूक्ष्मतम भाग परमाणु ही केवल ऐसा तत्त्व है, जिसको न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न ही नष्ट किया जा सकता है— A matter can-niether be produced and nor can be destroyed. इस सिद्धान्त के आधार पर परमाणु से स्थूल संसार के जितने भी पदार्थ हैं, वे छोटे-छोटे परमाणुओं से मिलकर बने हैं । और क्योंकि वे मिलकर

बने हैं, इसीलिए नष्ट भी हो जाते हैं । इससे सिद्ध होता है कि पृथ्वी भी छोटे-छोटे परमाणुओं से मिलकर बनी हैं, यह सदा से बनी बनाई नहीं है । और जब पृथ्वी बनी है, तो इसका बनाने वाला भी कोई न कोई अवश्य है । "कोई वस्तु अपने आप नहीं बनती" यह बात हम पिछले प्रकरण में = (द्वितीय प्रश्न के उत्तर में) सिद्ध कर चुके हैं । इसलिए पृथ्वी आदि संसार के सभी पदार्थों को बनाने वाला ईश्वर ही है, भले ही हमने ईश्वर को पृथ्वी आदि पदार्थ बनाते हुए न भी देखा हो ।

पृथ्वी की उम्र के सम्बन्ध में भी विज्ञान का मत देखिये—विज्ञान के मतानुसार पृथ्वी की उम्र लगभग ४ अरब ६० करोड़ वर्ष बतायी गयी है । यह परिणाम पुरानी चट्टानों में विद्यमान यूरेनियम आदि पदार्थों के परीक्षण के पश्चात् निकाला गया है ।

According to their deductions, based on the study of rocks, the age of the Earth is estimated to be around 4600 million years. —*MANORAMA*. A Handy Encyclopaedia (year book 1983). Page-105, Sicence and Technology Section.

अनेक प्रकार के छोटे-बड़े उल्का पिण्ड आकाश में टूटते रहते हैं । इन उल्का पिण्डों के खण्ड, जो पृथ्वी पर आकर गिरे हैं, भारतीय व विदेशी संग्रहालयों में देखे जा सकते हैं । ये उल्का पिण्ड पृथ्वी के समान ही सौर मण्डल के सदस्य हैं, और सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं । जब ये उल्का पिण्ड सौर मण्डल के सदस्य होते हुए टूट जाते हैं, तो पृथ्वी भी सौर मण्डल का सदस्य होते हुए क्यों न टूटेगी ? इससे भी यह सिद्ध होता है कि यह संसार सदा से बना बनाया नहीं है, बल्कि टूटता है और बनता है । इस समस्त संसार का बनाने और बिगाड़ने वाला सर्वशक्तिमान् = (omnipotent), सर्वव्यापक = (Ominipresent), सर्वज्ञ = (Omniscient) ईश्वर ही है ।

संवाद-४

नास्तिक द्वारा ईश्वर की सत्ता का खण्डन :

१. प्रतिज्ञा—ईश्वर नहीं है ।

२. हेतु—संसार में अव्यवस्था होने से ।

३. उदाहरण—जैसे राजा के न होने पर नगर में अव्यवस्था हो जाती है ।

४. उपनय—बिना राजा के नगर के समान ही संसार में अव्यवस्था दिखाई देती है ।

५. निगमन—इसलिए संसार में अव्यवस्था होने के कारण ईश्वर की सत्ता नहीं है ।

व्याख्या : इस बात को हम प्रत्यक्ष ही जानते हैं कि राजा के न होने पर नगर और समाज में अन्याय, चोरी, जारी, हिंसा, लड़ाई, झगड़ों से अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है । राजा हो, तो नहीं होती । विद्यालंय में अध्यापक के न होने पर कक्षा में बच्चे शोर मचाते हैं, मार-पिटाई करते हैं; कक्षा में अध्यापक के होने पर नहीं करते । धार्मिक, विद्वान्, सभ्य माता-पिता के घर में न होने पर लड़के लोग परस्पर झगड़ते हैं, सिग्रेट-शराब पीते हैं, जुआ खेलते हैं, आचारहीन-स्वच्छन्द बन जाते हैं, किन्तु माता-पिता के होने पर उपर्युक्त दुष्ट कर्म नहीं करते । इस प्रकार संसार का स्वामी, राजा, संचालक, न्यायाधीश कोई ईश्वर होता तो संसार में हिंसा, चोरी, जारी, अन्यायादि के रूप में जो अव्यवस्था फैली हुई है, वह नहीं होती । चूंकि अव्यवस्था स्पष्ट दीख रही है, इससे तो यही सिद्ध होता है कि ईश्वर नाम की कोई सत्ता नहीं हैं ।

आस्तिक द्वारा ईश्वर की सत्ता का मण्डन :

१. प्रतिज्ञा—ईश्वर है ।

२. हेतु—संसार में मनुष्यों द्वारा की गई अव्यवस्था का

सम्बन्ध ईश्वर से न होने से ।

३. उदाहरण—राजा के नगर में होते हुए भी प्रजा के द्वारा स्वतन्त्रता से आज्ञा भंग करने के समान ।
४. उपनय—वैसे ही संसार के स्वामी ईश्वर के होते हुए भी मनुष्य स्वतन्त्रता से अन्याय आदि पाप करते हैं ।
५. निगमन—इसलिए संसार में मनुष्यों द्वारा स्वतन्त्रता से पापादि किये जाने के कारण ईश्वर का निषेध नहीं हो सकता, ईश्वर तो अपनी व्यवस्था के कारण सिद्ध ही है ।

व्याख्या : संसार में जो अव्यवस्था दिखाई देती है, यह मनुष्यों द्वारा फैलाई गयी है । इसके आधार पर आपका यह कहना उचित नहीं है कि—"ईश्वर की संसार में कोई सत्ता नहीं है, यदि ईश्वर होता, तो यह अव्यवस्था नहीं होती ।" क्योंकि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र हैं । अपने अज्ञान, हठ, दुराग्रह, स्वार्थ आदि दोषों के कारण चोरी, जारी, हिंसा, अन्याय आदि बुरे कर्मों को करता है । यदि मनुष्य कर्म करने में ईश्वर के आधीन होता, तो संसार में कोई भी अव्यवस्था-रूप कर्म नहीं होता । इसलिए संसार में जो अव्यवस्था दिखाई देती है, उसका सत्य कारण 'मनुष्यों की कर्म करने में स्वतंत्रता होना ही है', न कि 'ईश्वर की सत्ता का न होना ।'

आपने अपने पक्ष की पुष्टि में राजा का उदाहरण देकर, अर्थापत्ति से यह दर्शाने का प्रयास किया है कि 'राजा के होने पर, नगर में चोरी, जारी, हिंसा से अव्यवस्था नहीं होती' ऐसी बात नहीं है । न्यायकारी बलवान्, धार्मिक, विद्वान्, आदर्श राजा के तथा उसके बनाये संविधान एवं दण्ड-व्यवस्था होते हुए भी, राज्य में लोग स्वतंत्रता से चोरी, जारी, हिंसा आदि कार्यों को कर लेते हैं । यद्यपि उनको यह ज्ञात होता है कि यह कार्य अनुचित है, संविधान विरुद्ध है तथा प्रतिफल में दण्ड भी मिलेगा । ऐसा प्रत्यक्ष देखते

ए भी हम यह नहीं कहते हैं कि नगर का राजा नहीं हैं ।

इसी प्रकार से 'अध्यापक-विद्यार्थी' तथा 'माता-पिता व लड़कों' के विषय में दिये दृष्टान्त को भी समझना चाहिए । सभ्य, विद्वान्, धार्मिक, गुरुजन तथा माता-पिता के, कक्षा तथा घरमें न रहने पर ही विद्यार्थी वा बच्चे अव्यवस्था नहीं उत्पन्न करते हैं, बल्कि गुरुजन तथा माता-पिता के होते हुए भी अव्यवस्था करते हैं । उच्छृंखल, अनुशासनहीन, दुष्ट विद्यार्थी व बच्चे तो, गुरुजन तथा माता-पिता के द्वारा समझाने, भय दिखाने तथा दण्ड देने पर भी, परस्पर झगड़ते हैं, तोड़-फोड़ करते हैं, सिग्रेट-शराब पीते हैं, जुआ खेलते हैं, व आचारहीनता सम्बन्धी कार्यों को करते हैं । तब क्या कक्षा में अध्यापक या घर में माता-पिता की सत्ता का निषेध किया जा सकता है ? ऐसा तो मानते हुए नहीं बनता ।

वास्तव में सिद्धान्त यही है कि प्रत्येक मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र हैं । कर्म करते हुए को राजा, गुरु, माता-पिता आदि पकड़ नहीं सकते । हाँ, दुष्ट कर्म कर लेने पर दण्ड देते हैं अथवा अच्छा कर्म करने के पश्चात् पुरस्कार भी देते हैं । ऐसी ही स्थिति संसार में ईश्वर के विषय में जाननी चाहिए ।

इस संसार का राजा, स्वामी-परमपिता ईश्वर है । ऐसे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, न्यायकारी पिता के होते हुए भी मनुष्य रूप पुत्र लोग अपनी स्वतंत्रता से हिंसा, चोरी, जारी, अन्याय आदि कर्मों को करते हैं । यद्यपि वेद के माध्यम से ईश्वर ने विहित-निषिद्ध (कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य) कर्मों का निर्देश इस सृष्टि के आदि में किया था, जो अब तक हमारे पास विद्यमान है । मनुष्यों के हृदयों में बैठा हुआ ईश्वर भय, शंका, लज्जा उत्पन्न करके पाप कर्मों को न करने की प्रेरणा देता है । कुत्ता, बिल्ली, गधा, बैल, सूअर आदि दुःखमय योनियों में पापों का फल जीवों को

भोगते हुए भी दर्शाता है । फिर भी मनुष्य इन सब बातों के होते हुए भी अपनी स्वतंत्रता से अन्यायादि दुष्ट कार्य कर लेता है । ईश्वर ने मनुष्यों को कर्म करने में स्वतंत्र छोड़ा हुआ है । कर्म करते समय उसका हाथ नहीं पकड़ता । हाँ, कर्म कर लेने पर न्याय-अनुसार फल अवश्य देता है ।

ईश्वर की सत्ता तो सिद्ध ही है, क्योंकि उसके कार्यों में सर्वत्र व्यवस्था ही पायी जाती है । ईश्वर के कार्य है—संसार को बनाना, चलाना, समय आने पर इसे नष्ट कर देना और सब जीवों के कर्मों का ठीक-ठीक फल देना । ईश्वर सूर्य, चन्द्र आदि को बनाता है । क्या इन्हें ईश्वर से अतिरिक्त कोई और बना सकता हैं ? ईश्वर इन सूर्य, चन्द्र आदि को बनाकर चलाता भी है । ये सूर्यादि पदार्थ क्या एक मिनट के लिए भी चलते-चलते रुके हैं ? ईश्वर का कार्य है बीजों को बनाना, बीजों से वनस्पतिओं को बनाना । आम से आम होता है, केले से केला, गेहूँ से गेहूँ और चने से चना । ऐसे ही ईश्वर मनुष्यादि प्राणियों के शरीरों को बनाता है । मनुष्य से मनुष्य और पशु से पशु का शरीर बनता है । क्या कभी इन कार्यों में फेर-बदल या अव्यवस्था होती है ? इसी प्रकार से संसार को नष्ट करनां भी ईश्वर का ही कार्य है । एक समय आयेगा, जब सूर्य की गर्मी समाप्त हो जावेगी, पृथ्वी में उत्पादन शक्ति नहीं रहेगी, तब संसार मनुष्यादि प्राणियों के लिए उपयोगी नहीं रहेगा । उस अवस्था में ईश्वर इसे नष्ट कर देगा । जीवों को, अपने शुभ-अशुभ कर्मों के अनुरूप ही मिली मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि विभिन्न योनियाँ ईश्वर के न्याय को सिद्ध कर रही हैं । अत: ईश्वर के कार्यों में सर्वत्र व्यवस्था ही दीखती है ।

ईश्वर का कार्य-क्षेत्र अलग है और जीवों का कार्यक्षेत्र अलग । ईश्वर के कार्यों को जीव नहीं कर सकता और

जीवों के कार्यों को ईश्वर नहीं करता" इस सिद्धान्त की चर्चा हम द्वितीय प्रश्न के उत्तर में कर चुके हैं। इसलिए जैसे राजा द्वारा संविधान बतला देने पर भी नागरिक लोग अपनी स्वतन्त्रता से अनुचित कार्य कर लेते हैं, इससे राजा की सत्ता का निषेध नहीं होता। ऐसे ही ईश्वर द्वारा भी 'वेद' रूपी संविधान बतला दिये जाने पर तथा मन में भय, शंका, लज्जा को उत्पन्न करने पर भी मनुष्य लोग अपनी स्वतंत्रता से संसार में चोरी, जारी, छल, कपट, अन्याय आदि करके अव्यवस्था फैलाएँ, तो इसे ईश्वर की सत्ता का निषेध नहीं किया जा सकता।

संवाद-५

नास्तिक द्वारा ईश्वर की सत्ता का खण्डन :

१. प्रतिज्ञा—ईश्वर नहीं है ।

२. हेतु—प्रार्थना करने वाले व्यक्ति का दुःख दूर न होने से ।

३. उदाहरण—छोटे अनाथ बालक के समान,

४. उपनय—वैसी ही, ईश्वर से प्रार्थना करने वाले की स्थिति है ।

५. निगमन—इसलिए प्रार्थना करने वाले व्यक्ति का दुःख दूर न होने से, ईश्वर की सत्ता नहीं है ।

आस्तिक लोग बड़े सवेरे अंधेरे में ही उठकर बड़ी भावना से अपने इष्ट-देव के समक्ष भजन-गीत, माला-कथा, पूजा-पाठ, भेंट-प्रसाद, ध्यान-जप आदि धार्मिक क्रियाकाण्ड करते हुए लम्बी लम्बी प्रार्थनाएँ करते हैं कि हे प्रभो ! हमें धन-धान्य से परिपूर्ण करो, हमें नीरोग और स्वस्थ बनाओ, पुत्र-पौत्र प्रदान करो, धंधा-नौकरी दिलाओ, परीक्षा में पास करो, मुकद्दमा जिताओ आदि आदि । जैसे एक अनाथ बच्चा, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी लगने पर अपने माता-पिता को पुकारता है । किन्तु उसकी कोई नहीं सुनता, ऐसी ही स्थिति इन ईश्वर-भक्त आस्तिकों की होती है । ये आस्तिक प्रतिदिन घण्टों अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक कष्टों, अभावों, चिन्ताओं, दुःखों का वर्णन बड़े कातर स्वर में कल्पित ईश्वर के समक्ष करते हैं, गिड़गिड़ाते हैं, रोते हैं, किन्तु उनका कोई भी दुःख दूर नहीं होता । यदि वास्तव में ईश्वर होता तो निश्चित ही इन सभी ईश्वर भक्तों के कष्ट-दुःख दूर हो जाते; किन्तु नहीं होते, इससे यही सिद्ध होता है कि ईश्वर की सत्ता नहीं है ।

आस्तिक द्वारा ईश्वर की सत्ता का मण्डन :

१. प्रतिज्ञा—ईश्वर है,
२. हेतु—पुरुषार्थ सहित, विधिवत् सच्ची प्रार्थना करने पर दुःख दूर होने से,
३. उदाहरण—भार ढ़ोने वाले (कुली) के समान,
४. उपनय—वैसे ही पुरुषार्थी, सच्चे प्रार्थी के दुःख दूर होते हैं,
५. निगमन—इसलिए पुरुषार्थ-सहित, सच्ची प्रार्थना करने पर दुःख दूर होने से ईश्वर की सत्ता है ।

"आस्तिक लोग ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, किन्तु उनके कष्ट दूर नहीं होते, यदि ईश्वर होता तो अवश्य ही प्रत्येक भक्त की प्रार्थना सफल होती" इतने मात्र से आपने मान लिया कि ईश्वर की सत्ता नहीं है, ऐसा आपका मानना उचित नहीं है ।

सर्व-प्रथम तो यह जानने की बात है कि '*प्रार्थना*' किसे कहते हैं, तथा प्रार्थना कब करनी चाहिए ।जो व्यक्ति प्रार्थना की परिभाषा व लक्षण को नहीं जानते, वे ही ऐसी शंकाएं किया करते हैं । ऋषिने 'प्रार्थना' का स्वरूप निम्न प्रकार से दर्शाया है—"अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त, उत्तम-कर्मों की सिद्धि के लिए परमेश्वर वा किसी सामर्थ्य वाले मनुष्य का सहाय लेने को '*प्रार्थना*' कहते हैं" आर्योद्देश्यरत्नमाला संख्या-२४, लेखक स्वामी दयानन्द सरस्वती ।

जैसे कोई कुली या भार ढ़ोने वाला मजदूर स्वयं कुछ भी परिश्रम न करता हुआ, हाथ पर हाथ धरे खड़ा रहे और अन्यों से यह कहे कि यह भार मेरे सिर पर रखवा दो तो कोई भी उसकी सहायता करने को उद्यत नहीं होगा । जैसे एक विद्यार्थी अपने अध्यापक द्वारा पढ़ाये गये पाठ को न तो ध्यानपूर्वक सुनता है, न लिखता है, न स्मरण करता है और न ही अध्यापक की अन्य

अच्छी-अच्छी बातों का पालन करता है, किन्तु जब परीक्षा का काल निकट आता है, तो गुरुजी, गुरुजी, की रट लगा कर अपने अध्यापक से कहता है कि मुझे उत्तीर्ण कर दो । ऐसी स्थिति में कौन बुद्धिमान्, न्यायप्रिय अध्यापक उस विद्यार्थी को, जिसने, परीक्षा के लिए कोई पुरुषार्थ नहीं किया, अंक देकर उर्त्तीण कर देगा ? कोई भी नहीं ।

ठीक ऐसे ही ईश्वर, प्रार्थना करने वाले व्यक्ति की सहायता करने से पूर्व कुछ बातों की अपेक्षा रखता है । ईश्वर ने धन, बल, स्वास्थ्य, दीर्घायु, पुत्र आदि की प्राप्ति के लिए तथा अन्य कामनाओं की सफलता हेतु वेद में विधि का निर्देश किया है । जो व्यक्ति उन विधिनिर्देशों को ठीक प्रकार से जाने बिना और उनका व्यवहार काल में आचरण किये बिना ही प्रार्थना करते हैं, उनकी स्थिति पूर्वोक्त कुली या विद्यार्थी की तरह ही होती है । विधिरहित-पुरुषार्थहीन प्रार्थना को सुनकर अध्यापक-रूपी ईश्वर प्रार्थी की कामनाओं को पूरा नहीं करता, क्योंकि ईश्वर तो महाबुद्धिमान् तथा परमन्यायप्रिय है ।

शुद्ध ज्ञान और शुद्ध कर्म के बिना की गयी प्रार्थना एकांगी है । वेदादि सत्यशास्त्रों को यथार्थरूप से पढ़कर समझे बिना तथा तदनुसार आचरण किये बिना कितनी ही प्रार्थना की जाय, वह प्रार्थना, 'प्रार्थना' की कोटि में नहीं आती ।

जो ईश्वरभक्त 'प्रार्थना' को केवल मन्दिर में जाने, मूर्ति का दर्शन करने, उसके समक्ष सिर झुकाने, तिलक लगाने, चरणामृत पीने, पत्र-पुष्पादि चढ़ाने, कुछ खाद्य पदार्थों को भेट करने, कोई नाम स्मरण करने, माला फेरने, दो भजन गा-लेने, किसी तीर्थ पर जाकर स्नान करने, कुछ, दान-पुण्य करने तक ही सीमित रखते हैं, उनकी भी प्रार्थना सफल नहीं होती । ऐसे प्रार्थी,

प्रार्थना के साथ सुकर्मों का सम्बन्ध नहीं जोड़ते, व्यवहार काल में ईश्वर— जैसा पुरुषार्थ, प्रार्थना करने वालों से चाहता है, वैसा व्यवहार वे नहीं करते हैं। यह प्रार्थना की असफलता में कारण बनता है। आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि जिन हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, मद्यपान, असंयम आलस्य, प्रमाद, आदि बुरे कर्मों से अशान्ति, रोग, भय, शोक, अज्ञान, मृत्यु, अपयश आदि दुःखों की प्राप्ति होती है, उन्हीं बुरे कर्मों को करता हुआ 'प्रार्थी' सुख, शान्ति, निर्भयता, स्वास्थ्य, दीर्घ आयु, बल, पराक्रम, ज्ञान, यश आदि सुखों को ईश्वर से चाहता है, यह कैसे संभव है ? कदापि नहीं।

पूर्ण पुरुषार्थ के पश्चात् की गयी प्रार्थना यदि सफल नहीं होती, तो शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार तीन कारण हो सकते हैं। वे हैं कर्म, कर्त्ता और साधन। देखें न्याय-दर्शन २-१-५८वाँ सूत्र (न कर्मकर्त्तसाधनवैगुण्यात् ।।) जब ये तीनों (= कर्म, कर्त्ता और साधन) अपने गुणों से युक्त होते हैं, तो प्रार्थना अवश्य सफल होती है, इसके विपरीत इन तीनों में से किसी भी एक कारण में न्यूनता रहती है तो प्रार्थना कितनी ही क्यों न की जाये, प्रार्थी की प्रार्थना सफल नहीं होती।

उदाहरण के लिए एक रोगी व्यक्ति, अपने रोग से विमुक्त होने के लिए किसी कुशल वैद्य के पास जाता है और वैद्य से कहता है कि मुझे स्वस्थ बनाइये। इस पर वैद्य उसके रोग का परीक्षण करके रोगी को निर्देश करता है कि अमुक औषधि, इस विधि से, दिन में इतनी बार इतनी मात्रा में खाओ तथा पथ्यापथ्य को भी बताता है कि यह वस्तु खानी है और यह वस्तु नहीं खानी है, इसके साथ ही रोगी को दिनचर्या, व्यवहार आदि के विषय

में भी निर्देश करता है ।

इतना निर्देश करने पर भी यदि रोगी, जो औषधि, जब जब जितनी मात्रा में, जितनी बार लेनी होती है, तथा जिस विधि से लेनी होती है, वैसा नहीं करता तो कर्म का दोष होता है । औषधि विषयक कार्यों को ठीक प्रकार से सम्पन्न करे, किन्तु रोगी-क्रोध, आलस्य, प्रमाद, चिन्ता, भय, निराशादि से युक्त रहता है, तो यह कर्त्ता का दोष है । रोगी स्वयं कितना ही निपुण क्यों न हो, औषधि नकली है, घटिया है, थोड़ी है, तो यह साधन का दोष है ।

ठीक इसी तरह, किसी प्रार्थना करने वाले ईश्वरभक्त आस्तिक व्यक्ति की प्रार्थना सफल नहीं होती और उसके दुःख दूर नहीं होते तो यह नहीं मान लेना चाहिए कि ईश्वर की सत्ता नहीं है । किन्तु ऐसी स्थिति में यह अनुमान लगाना चाहिए कि उसके पुरुषार्थ में कुछ कमी है अर्थात् कर्म, कर्त्ता, साधनों में कहीं न कहीं न्यूनता या दोष है । उन न्यूनताओं व दोषों को जानकर उनको दूर करना चाहिए । ऐसा करने पर प्रार्थी की प्रार्थना अवश्य सफल होगी । इसलिए उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि ईश्वर की सत्ता है और वह दुःखों को दूर भी करता है, किन्तु सभी प्रार्थना करने वाले भक्तों के दुःखों को दूर नहीं करता केवल उन्हीं भक्तों के दुःखों को दूर करता है जो पुरुषार्थ सहित सच्ची विधि से ईश्वर की प्रार्थना करते हैं ।

दर्शन योग महाविद्यालय : एक परिचय

स्थापना : दर्शन योग महाविद्यालय की स्थापना चैत्र शुक्ला प्रतिपदा विक्रम संवत् २०४३ (१० अप्रैल १९८६) को श्री स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक द्वारा हुई। इसका प्रारंभिक नाम "दर्शन एवं योग प्रशिक्षण शिविर" था।

उद्देश्य : (१) महर्षि पतंजलि प्रणीत अष्टाङ्गयोग की पद्धति से उच्च स्तर के योग-प्रशिक्षकों को तैयार करना, जो देश-विदेश में प्रचलित मिथ्यायोग के स्थान पर सत्य योग का प्रशिक्षण दे सकें।

(२) विशिष्ट योग्यता वाले वैदिक-दार्शनिक विद्वानों का निर्माण करना जो सार्वभौमिक युक्तियुक्त, अकाट्य, वैज्ञानिक, शाश्वत, वैदिक सिद्धांतो का, बुद्धिजीवी वर्ग के समक्ष प्रभावपूर्ण शैली से प्रतिपादन करके, उनकी नास्तिकता मीटाकर उन्हें वैदिक धर्मानुयायी बना सकें।

(३) निष्काम भावना से युक्त, मनसा-वाचा-कर्मणा एक होकर तन, मन और धन से सम्पूर्ण जीवन की आहुति देनेवाले व्यक्तियों का निर्माण करना, जो अपनी और संसार की अविद्या, अधर्म तथा दुःखों का विनाश करके उसके स्थान पर विद्या, धर्म तथा आनन्द की स्थापना कर सकें।

प्रवेश के लिए योग्यता : ● प्रवेश केवल ब्रह्मचारियों के लिए।

- वैदिक सिद्धान्तो में निष्ठा होना, योगाभ्यास तथा दर्शनो के अध्ययनमें रूचि होना।
- संस्कृत भाषा पढ़ने, लिखने, बोलने में समर्थ होना (व्याकरणाचार्य, शास्त्री या समकक्ष योग्यता वालों को प्राथमिकता)।
- अध्ययन काल में घर से या स्वजनों से सांसारिक सम्बन्ध न होना। तथा अवस्था १८ वर्ष से अधिक होना।